अध्याय-3

कर्मयोग-नामक तीसरा अ0।।

[1-8 ज्ञानयोग और कर्मयोग के अनुसार अनासक्त भाव से नियत कर्म करने की श्रेष्ठता का निरूपण।]

अर्जुन उवाच-ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिः जनार्दन। तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।3/1

जनार्दन ते कर्मणः बुद्धिः ज्यायसी	{जनैरर्द्यते=याच्यते} हे अवढरदानी! आप {कर्मेन्द्रियों के} कर्मयोग से बुद्धियोग श्रेष्ठ
मता चेत् तत् केशव घोरे	मानते हो {जो ज्ञानेन्द्रियों से जुड़ा है}, तो हे ब्रह्मा के स्वामी! {अघोरियों-जैसे नीच/} घोर
कर्मणि मां किं नियोजयसि	{भ्रष्टेन्द्रिय के} कर्म में मुझे क्यों लगा रहे हो? {अघोरियों को तो कोई नहीं चाहता।}

व्यामिश्रेण इव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयां।। 3/2

व्यामिश्रेणेव वाक्येन मे बुद्धिं	{एक/दूसरे से} परस्पर मिले हुए {दुहरा अर्थ देने वाले ब्रह्म-} वाक्यों से मेरी बुद्धि {इस तरह}
मोहयसीव तत् निश्चित्य एकं	{किसलिए} भ्रमित-सी कर रहे हो। तो {कर्मयोग-बुद्धियोग में से} निश्चय करके एक बात
वद येन अहं श्रेयः आप्नुयां	{मेरे से} कहो, जिससे मैं {'निश्चयबुद्धि विजयते' बन सकूँ और} श्रेष्ठता को प्राप्त करूँ।

भगवानुवाच-लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनां।। 3/3

अनघ मया अस्मिन् पुरा लोके	हे निष्पाप! मैंने इस पुराने {कलियुगान्त में पुरु. संगम की शूटिंग के} लोक में
द्विविधा निष्ठा प्रोक्ता ज्ञानयोगेन	दो तरह की योगनिष्ठा-प्रणाली कही थी- {मनन-चिंतन सहित} ज्ञानयोग द्वारा
सांख्यानां योगिनां कर्मयोगेन	{कपिल-जैसे} ज्ञानियों की {और गृहस्थियों के} कर्म सहित योग द्वारा कर्मयोगियों की।

न कर्मणामनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।। 3/4

पुरुषः कर्मणां अनारम्भात् नैष्कर्म्यं	{निवृत्त} व्यक्ति कर्मों का आरम्भ न करने से कर्महीनता {रूप सम्पूर्ण त्याग} को
न अश्नुते च संन्यसनादेव	नहीं पाता, वैसे ही {बिना विचारे समुचित & अनिवार्य कर्मों के} सम्पूर्ण त्याग से भी
सिद्धिं न समधिगच्छति	{जीवन रहते दुखों से मुक्ति वा जीवन्मुक्ति रूप} सिद्धि संपूर्णतया नहीं प्राप्त हो सकती।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत्। कार्यते हि अवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः।। 3/5

हि कश्चित् क्षणं अपि अकर्मकृत्	निःसन्देह कोई {व्यक्ति} क्षण भर भी {मल-मूत्र त्यागादि अनिवार्य} कर्म किए बिना
न जातु तिष्ठति हि प्रकृतिजैः	नहीं रह पाता; क्योंकि प्रकृतिकृत {सर्वकालीन सत-रज-तम में से कोई भी
गुणैः अवशः सर्वः कर्म कार्यते	प्रधान} गुणों {सहित ही इन्द्रियों} से बरबस सब प्रकार के कर्म करने पड़ते हैं।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।। 3/6

यः विमूढात्मा कर्मेंद्रियाणि संयम्य	जो महामूर्ख पुरुष {अनेक जन्मों से ही प्रबल बनी} कर्मेन्द्रियों को {जबरियन} रोककर,
इन्द्रियार्थान् मनसा स्मरन्	{हर प्रकार की इन्द्रिय-सहयोग बिना} इन्द्रिय के भोगों को मन से याद करता हुआ
आस्ते स मिथ्याचारः उच्यते	{देह-निर्वाह का धंधा छोड़, निष्क्रिय हुआ} बैठता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है।

यः तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। 3/7

अर्जुन तु यः मनसा इन्द्रियाणि नियम्यासक्तः	हे अर्जुन! परंतु जो {स्थिर} मन से इन्द्रियाँ नियमित करके, अनासक्त हुआ
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगं आरभते स विशिष्यते	कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है, वह विशेष {मान्य} है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो हि अकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।। 3/8

त्वं नियतं कर्म कुर्वकर्मणः कर्म हि ज्यायो	तू {नैसर्गिक} नियत कर्मों को कर। कर्म न करने से कर्म करना ही श्रेष्ठ है
चाकर्मणः ते शरीरयात्रापि न प्रसिद्ध्येत्	और {दैनिक} कर्म से रहित तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

[9-16 यज्ञादि कर्मों की आवश्यकता का निरूपण।]

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।3/9

यज्ञार्थादन्यत्र कर्मणोऽयं लोकः कर्मबंधनः	{रुद्रज्ञान} यज्ञ के सिवा दूसरे किसी कर्म से यह {नरक} लोक कर्मबंधन है।
कौन्तेय मुक्तसंगः तदर्थं कर्म समाचर	हे अर्जुन! {दैहिक} आसक्ति छोड़ उस {अविनाशी रुद्रज्ञानयज्ञ-} अर्थ कर्म कर।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेषः वः अस्तु इष्टकामधुक्।।3/10

पुरा सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा	आदिकालीन {पु.संगमयुगी शूटिंग में} यज्ञ सहित {मानसी} प्रजा पैदा करके
प्रजापतिरुवाच अनेन प्रसविष्यध्वं	प्रजापति ने कहा- इस {अविनाशी रुद्र-ज्ञानयज्ञ} से {सत्त्वप्रधान सृष्टि की} वृद्धि करो।
एषः वः इष्टकामधुक् अस्तु	यह {यज्ञ} तुम्हारी {स्वर्गीय/अतीन्द्रिय सुखों वाली} इष्ट कामना की कामधेनु हो।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। 3/11

अनेन देवान् भावयत ते देवा	इस {यज्ञ} से {9 कुरी के ब्राह्मण सो पावन शरीरी} देवों को सन्तुष्ट करो। वे देवता
वः भावयन्तु परस्परं	तुमको {कल्पान्तकाल में भी सूक्ष्म देह द्वारा इष्ट भोगादि से} सन्तुष्ट करें। {ऐसे} एक-दूसरे को
भावयन्तः परं श्रेयः अवाप्स्यथ	{परस्पर सहयोग द्वारा} तृप्त करते हुए {विष्णुलोकीय} परम कल्याण को प्राप्त करो।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैः दत्तानप्रदाय एभ्यः यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। 3/12

हि यज्ञभाविताः देवा वः इष्टान्	क्योंकि यज्ञसेवा से संतुष्ट हुए {ऐसे ब्राह्मण सो सूक्ष्म} देव तुमको इच्छित
भोगान् दास्यन्ते तैः दत्तानेभ्यः	भोग देंगे। उनके द्वारा {सूक्ष्म पराशक्ति से} दिए हुए {सर्वेन्द्रियों के भोग} उन्हें
अप्रदाय यः भुंक्ते सः स्तेनः एव	अर्पण किए बिना जो {ब्राह्मण/ब्रह्मापुत्र अलबेला बनकर} भोगता है, वह चोर ही है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्ति आत्मकारणात्।।3/13

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तः सर्वकिल्बिषैः	{रुद्र-ज्ञान} यज्ञसेवा से बचे हुए को खाने वाले {परमार्थी} संतपुरुष सब पापों से
मुच्यन्ते ये आत्मकारणात् पचन्ति	{यहाँ ही} मुक्त हो जाते हैं। जो {स्वार्थी अर्पण किए बिना} अपने लिए पकाते हैं,
ते पापाः त्वघं भुंजते	{वे श्रीनाथीय पश्चिमी सभ्यता वाले तो श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं बनते।} वे पापी लोग तो पाप भोगते हैं।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।3/14

अन्नाद्भूतानि भवन्ति पर्जन्यात्	{आत्मस्नेह के} भोजन से {नौधा ब्राह्मणरूप} प्राणी होते हैं, {ज्ञान-} वर्षा से
अन्नसम्भवः यज्ञात्पर्जन्यः	{योगयुक्त स्थिति द्वारा आत्मिक} भोजन होता है, यज्ञसेवा से {ज्ञानमंथन द्वारा ज्ञान-} वर्षा
भवति यज्ञः कर्मसमुद्भवः	होती है। {ब्राह्मणों द्वारा किए गए वैसे ही फलित} कर्म से {अविनाशी रुद्र-} यज्ञ उत्पन्न हुआ है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितं।। 3/15

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि	{सात्विक, राजसी या तामसी} कर्म को {नं. वार चौमुखी संगठित} ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ जान।
ब्रह्म अक्षरसमुद्भवं	{अधोमुखी} ब्रह्मा अविनाशी {अव्यक्त• स्थिति वाले परमब्रह्म} से पैदा हुआ है।
तस्माद्यज्ञे सर्वगतं	इसलिए {ज्ञान-} यज्ञ में सर्वगामी {संगठित हुआ 4 मुखों का चतुर्मुखी सूक्ष्म देह का अधोमुखी}
ब्रह्म नित्यं प्रतिष्ठितं	{गिरती कला का} ब्रह्मा {अर्जुन-ध्वजा में चंचल हनुमान रूप से कथाओं में} सर्वदा उपस्थित है।

•जैसे बुद्ध-क्राइस्ट-गुरुनानक आदि सभी धर्मपिताओं के चेहरे से निराकारी अव्यक्तस्थिति स्पष्ट झलकती है, वैसे ही अल्लाह अव्वलदीन वाले सनातन धर्म के महादेव की बात है। चेहरे से ही स्पष्ट पारदर्शी रूहानियत झलकती है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयति इह यः। अघायुः इन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।3/16

इह यः एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयति	इस {पु.संगम} में जो ऐसे चलाए गए {उपरिवर्णित} चक्र का अनुसरण नहीं करता,
पार्थ सोऽघायुः इन्द्रियारामः मोघं जीवति	हे पृथापुत्र! वह पापायु {स्वार्थ से भरे} इन्द्रिय-सुखों में मग्न व्यर्थ जीवित है;

[17-24 भगवान और ज्ञानवान के लिए भी लोकसंग्रहार्थ कर्मों की आवश्यकता।]

यः तु आत्मरतिः एव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मनि एव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।3/17

तु यः मानवः आत्मरतिरेव चात्मतृप्तः	परंतु जो {मनु-पुत्र} मनुष्य {ज्योतिबिंदु} आत्मा में ही प्रीति वाला, आत्म-तृप्त है
च आत्मन्येव संतुष्टः स्यात्तस्य कार्यं न विद्यते	और {देह को भूल} आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसका कोई कार्य नहीं रहता।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेन इह कश्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।। 3/18

इह तस्य कृतेन एवाकृतेन कश्चनार्थः	यहाँ {पुरुषोत्तम संगम में} उसको करने से, ऐसे ही न करने से कोई प्रयोजन है।
च न सर्वभूतेष्वस्य कश्चिदर्थव्यपाश्रयः	और न किसी प्राणी पर इस {आत्मस्थ ब्राह्मण} का कोई {दैहिक} •कार्य निर्भर है।

•{जैसे स्वर्ग में सारे कार्य प्रकृति ही करेगी, वैसे ही सच्चे ब्राह्मण-देवों की पालना भगवान बाप करते-कराते हैं।} {साक्षात् ईश्वर के सेवाधारी ब्रह्मावत्स भूख नहीं मरेंगे।} कुरान में भी है-"कयामत में खुदा के बन्दे बड़े मौज में रहेंगे।" "शिवबाबा का बन और भूख मरे यह कब हो नहीं सकता" (मु.ता.3-11-68 पृ.4 मध्य)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो हि आचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।। 3/19

तस्मात् असक्तः सततं कार्यं	इस कारण से अनासक्त हुआ, निरंतर करने योग्य {विश्व नवनिर्माण के लिए यज्ञसेवा के}
कर्म समाचर ह्यसक्तः पूरुषः	{श्रेष्ठ} कर्म का {तू} आचरण कर; क्योंकि अनासक्त पुरुष {अविनाशी रुद्र-यज्ञार्थ सेवा-}
कर्माचरन् परमाप्नोति	कर्म का आचरण करता हुआ {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ के} परमपद को प्राप्त करता है;

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः। लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। 3/20

हि जनकादयः कर्मणैव संसिद्धिं	क्योंकि {वैदेही के जन्मदाता/जगत्पिता} जनक आदि कर्म द्वारा ही संपूर्ण सिद्धि को
आस्थिताः लोकसंग्रहं सम्पश्यन्	{पु.संगम में ही} प्राप्त हुए थे। {विश्व-नवनिर्माणार्थ} लोकसंग्रह को भली-भाँति देखते हुए
अपि कर्तुं एवार्हसि	भी {महारुद्र=आदिदेव+सदाशिव भगवान का} यज्ञकर्म करने लिए ही योग्य है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। 3/21

श्रेष्ठः यत्-2 आचरति तत्-2 एव	{दुनिया का} श्रेष्ठतम {मालिक} शिवबाबा {पु.संगम में} जो-2 आचरण करता है, वैसा-2 ही
इतरः जनः सः यत् प्रमाणं	दूसरे {अनुगामी} लोग {भी करते हैं}। वह {हीरो} जैसा {परमपिता शिव की श्रीमत से} प्रमाणित
कुरुते लोकः तदनुवर्तते	कर्म करता है, {सत्य सनातनी} लोग उस {श्रेष्ठतम कार्य} का {ही} •अनुसरण करते हैं।

•{जैसा कर्म हम करेंगे, हमको देख और करेंगे। (मु.ता.6.6.90 पृ.2 आदि)} {सुभाषित भी है 'महाजनेन येन गतः स पंथः।'} {देखिए आगे, गीता 3-23 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते'...}

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। 3/22

पार्थ त्रिषु लोकेषु मे किंचन	हे पृथा-पुत्र पृथ्वीराज! {सुख-दुःख-शांतिधाम} तीनों लोकों में मुझ {त्रिकालज्ञ} को कुछ {भी}
कर्तव्यं न अस्ति न अवाप्तव्यं	करने योग्य {ऐसा कोई} कर्म नहीं है, {और मुझे तीनों लोकों में} पाने योग्य {कुछ भी} नहीं है
अनवाप्तं चैव कर्मणि वर्त	जो {पदार्थ} न प्राप्त हो, तो भी {अनासक्त हो} कर्मों में लगा हूँ। {ताकि लोग फॉलो करें।}

यदि हि अहं न वर्तेयं जातु कर्मणि अतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। 3/23

हि यदि अहं जातु कर्मणि अतन्द्रितः न	क्योंकि यदि मैं कदाचित् कर्मों में आलस्यहीन होकर {लगनपूर्वक} न
वर्तेयं पार्थ मनुष्याः सर्वशः मम वर्त्मानुवर्तन्ते	लगा रहूँ, {तो} हे पार्थ! {संसारी} लोग सब प्रकार से मेरा मार्ग ही पकड़ेंगे।

उत्सीदेयुः इमे लोका न कुर्यां कर्म चेत् अहं। सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यां इमाः प्रजाः।। 3/24

अहं कर्म न कुर्यां चेदिमे	मैं {विश्व-नवनिर्माणार्थ श्रेष्ठतम संगठन का} कार्य न करूँ, तो ये {सुख-दुख-शांतिधाम के}
लोकाः उत्सीदेयुः च संकरस्य	लोक नष्ट हो जाएँ और {मैं वृष्णिवंशी यादवों/क्रिश्चियन्स-जैसी} वर्णसंकर प्रजा का
कर्ता स्यां इमाः प्रजाः उपहन्यां	कर्ता बनूँ {और} इस {नौधा ब्राह्मणों की नौ नाथीय} प्रजा का {भी} विनाशकारी बनूँ।

[25-35 अज्ञानी और ज्ञानवान के लक्षण तथा राग-द्वेष से रहित होकर कर्म करने के लिए प्रेरणा।]

सक्ताः कर्मणि अविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। कुर्यात् विद्वान् तथा असक्तः चिकीर्षुः लोकसङ्ग्रहं।।3/25

भारत अविद्वांसः यथा कर्मणि सक्ताः कुर्वन्ति	हे {विष्णुवत्} भरतवंशी! अज्ञानी लोग जैसे कर्म में आसक्त हो कर्म करते हैं,
तथा विद्वान् असक्तः लोकसंग्रहं चिकीर्षुः कुर्यात्	वैसे ही ज्ञानी अनासक्त हो संसार-संगठन की इच्छा से कर्म करे।

न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानां कर्मसङ्गिनां। जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।।3/26

कर्मसंगिनां आज्ञानां बुद्धिभेदं	{मेरे द्वारा 4 वर्णों में विभक्त हुए} कर्मों में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि में {ऊँच-नीच का} भेद
न जनयेत् युक्तः विद्वान्	उत्पन्न न करे; {अपना-2 सहज कर्म करने दे।} कर्मयोगी-विद्वान {स्वयं भी सदा}
सर्वकर्माणि समाचरन् जोषयेत्	{कोई भी वर्ण के} सब कार्यों को भली-भाँति करते हुए {रुद्रज्ञान यज्ञ} सेवा में लगाए।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।3/27

कर्माणि सर्वशः प्रकृतेर्गुणैः क्रियमाणानि	सब कार्य सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किए जा रहे हैं; {परन्तु}
अहंकारविमूढात्मा अहं कर्ता इति मन्यते	अहंकार से विशेषतः मूढ़ बना पुरुष "मैं करने वाला हूँ" - ऐसा मानता है।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः। गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।3/28

तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः तत्त्ववित् गुणाः	किंतु हे दीर्घबाहु! गुण व कर्म के विभाग का तत्व जानने वाला, गुण
गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा सज्जते न	{सत-रजादि} गुणों में आवर्तन करते हैं, ऐसा मानकर {कभी भी} आसक्त नहीं होता।

{पु. संगम में शिवबाबा & प्रकृति ने प्राणियों के स्वगुणों & कर्मानुसार पार्ट निश्चित किए थे। (दे. गी. 3-27; 4-13)}

प्रकृतेः गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु। तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नवित् न विचालयेत्।।3/29

प्रकृतेः गुणसम्मूढाः गुणकर्मसु	{त्रिगुणमयी मेरी} प्रकृति से गुणभ्रान्त नर {द्वैतवादी द्वापर से दैहिक} गुणकर्मों में
सज्जन्ते तानकृत्स्नविदः मन्दान्	{आत्मा को भूल} आसक्त हो जाते हैं। उन अधकचरी समझ वाले मन्दबुद्धि लोगों को
कृत्स्नवित् न विचालयेत्	{पु. संगमी शूटिंग में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञाता} सम्पूर्ण ज्ञानी {ब्रह्मावत्स} विचलित न करे।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा। निराशीः निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।3/30

अध्यात्मचेतसा मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य	आध्यात्मिक बुद्धि से मेरे में सब {यज्ञार्थ श्रेष्ठ} कर्मों को अर्पण कर,
निराशीः निर्ममः भूत्वा विगतज्वरः युध्यस्व	आशाहीन, ममताहीन होकर, निस्ताप हुआ {तू धर्म-}युद्ध कर।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।। 3/31

ये श्रद्धावन्तः मानवाः अनसूयन्तः मे इदं मतं	जो श्रद्धावान् मनुष्य ईर्ष्यारहित हुए मेरी इस {उपर्युक्त} श्रीमत का
नित्यमनुतिष्ठन्ति तेऽपि कर्मभिः मुच्यन्ते	{पु.संगम में} सदा पालन करते हैं, वे भी {सांसारिक} कर्मबंधन से छूट जाते हैं;

ये तु एतत् अभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतं। सर्वज्ञानविमूढान् तान् विद्धि नष्टानचेतसः।।3/32

तु ये अभ्यसूयन्तः मे एतद्मतं	किन्तु जो {मेरे मुकर्रर रथ से} ईर्ष्या करने वाले {लोग} मेरी इस श्रीमत का
नानुतिष्ठन्ति तान् अचेतसः सर्वज्ञान-	{ठीक से} पालन नहीं करते, उन बुद्धुओं को सम्पूर्ण {सच्चीगीता-एडवांस} ज्ञान से
विमूढान् नष्टान् विद्धि	{कलियुगान्त में बनने वाले नास्तिकों या अर्धनास्तिकों-जैसा} विशेष मूर्ख {और} नष्ट हुआ जान।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवानपि। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।3/33

ज्ञानवान् अपि स्वस्याः	{गीता का एडवांस} ज्ञानी मनुष्य भी अपने {पूर्वजन्मानुसार की गई पु0संगमी-शूटिंग के निश्चित}
प्रकृतेःसदृशं चेष्टते भूतानि प्रकृतिं	स्वभाव-अनुसार {अच्छी-बुरी} चेष्टा करता है, प्राणी {अपनी ही} प्रकृति/स्वभाव की ओर
यान्ति किं निग्रहः करिष्यति	जाते हैं। {इसमें प्रयत्नतः} तू क्या रोकथाम करेगा? {सारे उपक्रम व्यर्थ ही होंगे।}

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ। तयोः न वशमागच्छेत् तौ हि अस्य परिपन्थिनौ।।3/34

इन्द्रियस्य रागद्वेषौ इन्द्रियस्यार्थे	{भोग वाली} इन्द्रिय का राग और द्वेष {उस विशेष} इन्द्रिय के विषय-{भोग} में
व्यवस्थितौ तयोर्वशं नागच्छेत्	होता है, उन दोनों {राग-द्वेष} के वश में न आए; {समत्वं योग उच्यते, गी. 2-48}
हि तौ अस्य परिपन्थिनौ	क्योंकि वे दोनों इस {आत्मा} के शत्रु हैं। {उदासीन वदासीनं; गी.9-9;14-23}

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। 3/35

स्वनुष्ठिताद्विगुणः स्वधर्मः	स्वधर्म का पालन करने से {सतरजादि} गुणविहीन {निराकार-चेतन} आत्मा का धर्म
परधर्माच्छ्रेयान् स्वधर्मे निधनं	{जड़त्वमयी} प्रकृति के धर्म से श्रेष्ठ है। अपनी {चेतन आत्मा के} धर्म में {देह त्याग रूप} मरना
श्रेयः परधर्मः भयावहः	श्रेष्ठ है, {स्लामी-बौद्धी आदि विदेशी-विधर्मी} देहाभिमानियों का धर्म {अति} खतरनाक है।

[36-43 काम के निरोध का विषय]

अर्जुन उवाच-अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलात् इव नियोजितः।।3/36

वार्ष्णेय अनिच्छन् अपि अथ	{व्यभिचारी} वृष्णिवंशी •यादवों में जन्मे हे बं-बं महादेव! इच्छा न होते भी पीछे से {या चोरी से}
बलात् नियोजितः इव अयं पूरुषः	बलपूर्वक लगाए हुए की तरह यह पुरुष {स्लामी-बौद्धी-क्रिश्चियनादि विधर्मियों में से}

केन प्रयुक्तः पापं चरति	किसकी प्रेरणा से पाप करता है? {द्वैतवादी द्वापुर से क्या सभी विदेशी-विधर्मी निमित्त हैं?}

•{वृष्णिवंशी यादवों के बुद्धि रूपी पेट के मूसल ही लोहे के मिसाइल्स हैं, जो रजोगुणी और तामसी-कामी-क्रोधी स्लामी व क्रिश्चियन्स की अंतिम परिणति है, जिनसे सारे संसार का महाविनाश हो जाता है।}

श्रीभगवानुवाच-काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धि एनम् इह वैरिणं।।3/37

रजोगुणसमुद्भवः एष काम	{द्वापुर से ढाई हज़ार वर्ष में} रजोगुण से पैदा यह {डकैतों का मुखिया} कामविकार {और}
एष क्रोध महाशनः महापाप्मा	यह {सत्यानाशी} क्रोध बहुत भोगी है {और} बड़ा पापी है; {क्योंकि कामांग ही विनाशी देह में
इह एनं वैरिणं विद्धि	आत्मा का महापापी भ्रष्टांग है।} इस {द्वैतवादी विधर्मियों-विदेशियों के} संसार में इसको वैरी समझ।

{ऐसे तो सत-त्रेतायुग में देवगण भी श्रेष्ठ ज्ञानेन्द्रियों से भोगी ही हैं; किंतु वे तो आत्मस्थ मन-बुद्धिरूप आत्मा के संग ही हैं।}

धूमेनाव्रियते वह्निः यथा आदर्शः मलेन च। यथा उल्बेनावृतो गर्भः तथा तेन इदं आवृतं।। 3/38

यथा धूमेन वह्निश्च आदर्शः मलेन	जैसे काले धुएँ से अग्नि और {मनदर्पणरूप} शीशा {गंदे कर्म के} मैल से {अच्छी तरह}
आव्रियते यथा गर्भः उल्बेनावृतः	{द्वापुर से ही} ढक जाता है, जैसे गर्भ {मूत-पलीती कर्म से बनी} थैली से ढका रहता है,
तथा तेन इदं आवृतं	वैसे उस {रजोगुण पैदाकत्री भ्रष्ट कामेन्द्रिय के दुष्कर्म} से यह {बुद्धि का ज्ञान} ढका हुआ है।

आवृतं ज्ञानं एतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।3/39

कौन्तेय ज्ञानिनः नित्यवैरिणा च दुष्पूरेण	हे {कुमुनत्ति} कुन्ती के पुत्र! ज्ञानी का नित्य शत्रु-जैसा तथा कठिनाई से पूर्ति वाली
एतेन कामरूपेण अनलेन ज्ञानमावृतं	इस •कामविकार रूपी {बढ़वानल की} आग से {चंचल मन में} ज्ञान ढका रहता है।

•{इसीलिए सच्चीगीता एडवांस ज्ञान के साप्ताहिक पाठ में नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य अनिवार्य है; अन्यथा असुर/दैत्य ही बनेंगे।}

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्य अधिष्ठानमुच्यते। एतैः विमोहयति एषः ज्ञानमावृत्य देहिनं।।3/40

इन्द्रियाणि मनः बुद्धिः अस्य	{दस} इन्द्रियाँ, {अव्यक्त} मन-बुद्धि इस {काम} का {द्वैतवादी द्वापुरयुग से ही}
अधिष्ठानं उच्यते एषः एतैः	{देह समझने कारण} आश्रयस्थान कही जाती हैं। यह काम इन {प्रबल इन्द्रियों की चंचलता} के द्वारा
ज्ञानं आवृत्य देहिनं विमोहयति	{बुद्धिगत} ज्ञान को ढककर देहधारी {देवात्माओं} को विशेष रूप से मूढ़ बनाता है।

तस्मात् त्वं इन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहि हि एनं ज्ञानविज्ञाननाशनं।।3/41

भरतर्षभ तस्मात्त्वमादौ इन्द्रियाणि नियम्य ज्ञान-	हे भरतश्रेष्ठ! अतः तू पहले {चंचल} इंद्रियों को नियंत्रित कर, ज्ञान
विज्ञाननाशनं एनं पाप्मानं हि प्रजहि	& योग के नाशक इस {चोर/डकैत-प्रधान कामविकार वाले} पापी को अवश्य मार दे।

इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतस्तु सः।। 3/42

इन्द्रियाण्याहुः पराणि मनः इन्द्रियेभ्यः	{ज्ञान&कर्म-} इन्द्रियों को कहते हैं {कि बड़ी} प्रबल हैं; {प्रधान} मन इन्द्रियों से
परं बुद्धिः मनसस्तु परा	प्रबल है; {अल्लाह अव्वल दीन त्रिनेत्री जगत्पिता शंकर की} बुद्धि {कपिध्वज} मन से भी प्रबल है;
तु यः बुद्धेः परतः सः	किंतु जो {त्रिनेत्री रूप} बुद्धि से परे है, वह {तेरे रथ में त्रिकालदर्शी सदाशिव ज्योति ही} है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदं।। 3/43

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा	ऐसे बुद्धि {रूप त्रिनेत्री शंकर/आदम} से {जो} प्रबल है, {उस आकर्षणमूर्त को परमपिता} जानकर,
आत्मानं आत्मना	अपनी {जड़ स्टार मानिंद चेतन ज्योतिबिंदु} आत्मा को अपने {भ्रूमध्य में अपने मन-बुद्धि} द्वारा {भली भाँति}
संस्तभ्य महाबाहो दुरासदं	संपूर्ण स्थिर करके, हे दीर्घबाहु! कठिनाई {पूर्वक अभ्यास & वैराग} से वश होने वाले
कामरूपं शत्रुं जहि	काम-विकार रूपी {अपने अंदर के इस कपोलकल्पित कामदेव रूपी} शत्रु को मार डाल।

अभ्यास प्रश्न-अध्याय 3

(I) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

1) ये ज्ञान अटपटा, खटपटा, चटपटा है। कैसे ?
2) कर्म ना करने के क्या दुष्परिणाम हैं ?
3) मिथ्याचारी ढोंगी किसे कहते हैं?
4) किस श्लोक से सिद्ध करेंगे कि bk और pbk मिलकर कार्य करने से ही परमकल्याण को प्राप्त होंगे?
5) गीता में कर्मबंधन किसे बताया है?
6) श्रेष्ठ योगी की परिभाषा बताइये।
7) प्रजापति ने अर्जुन से रूद्रज्ञान यज्ञ के संबंध में क्या कहा ? केवल 2 वाक्य बताइये।
8) संतपुरूष सभी पापों से कब मुक्त होते हैं?
9) पूर्वी सभ्यता के ब्राह्मण कौन नहीं बन पाते हैं?
10) किस मनुष्य के लिए इस संसार में कोई कार्य नहीं रहता?
11) अनासक्त पुरूष को किस प्रकार की प्राप्ति होती है?
12) यदि शिवबाबा विश्व नवनिर्माण के संगठन का कार्य न करें तो क्या परिणाम होगा?
13) ज्ञानी को किस प्रकार कर्म करना चाहिए?
14) शिवबाबा ने संगमयुगी शूटिंग में कौन-2 सी योगनिष्ठा /प्रणाली कही थी?
15) अल्लाह अव्वलदीन कौन है? अर्थ बतायें।
16) हीरो पार्टधारी पुरुषोत्तम शिवबाबा जो-2 आचरण करते हैं, वैसे ही दूसरे श्रेष्ठ लोग भी करते हैं, इस संबंधित मुरली प्वॉइण्ट बतायें।
17) 4 वर्णों मे विभक्त अज्ञानियों के साथ ज्ञानियों को कैसा आचरण करने के लिए बताया है?
18) कर्मयोगी विद्वान के कर्म के बारे में क्या बताया है?
19) सच्ची गीता एडवांस ज्ञान के साप्ताहिक पाठ में कौन-सा नियम अनिवार्य है?
20) भ्रष्ट कामेन्द्रिय की मनसा द्वारा बुद्धि का ज्ञान ढका है, इसको उदाहरण सहित बताइये।
21) कामविकार का आश्रयस्थान क्या है?
22) ज्ञान और योग का नाशक कौन है?
23) कामविकार रूपी शत्रु को मारने का क्या तरीका बताया?
24) आत्मायें ज्ञान में कैसे आएँगी?
25) श्रीमत पर नहीं चलेंगे तो जानवर मिसल मर पड़ेंगे, इस प्रसंग में कौन-सा श्लोक लागू होता है?...या श्रीमत पर न चलने वाले अपने को ही नष्ट कर लेते है किस श्लोक से सिद्ध करेंगे

(II) निम्नलिखित वाक्यों के श्लोक पहचानकर बताइए-

1) बड़े भाग मानुष तन पावा। इस लाइन का अर्थ समझाइये।
2) पवित्र बनो योगी बनो।
3) महाजनेन येन गत: स पंथ:।
4) कयामत में खुदा के बन्दे बड़े मौज में रहेंगे।

5) अमानत में खयानत।

(III)-निम्नलिखित श्लोक का अर्थ बताएँ-

1) इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥
2) कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि
3) यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः।
4) मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
5) स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥
6) मनसस्तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतस्तु सः॥
7) प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

(IV)-रिक्त स्थान की पूर्ति करें-

1) ..... बुद्धि से मेरे में सब ..... कर्मों को .....,
2) ज्ञान &योग के ... इस {मुखिया ..... वाले} ....को अवश्य ..... दे।
3) जो .... मन से इन्द्रियाँ .....करके, ... हुआ कर्मेन्द्रियों से ..... का आचरण करता है, वह ..... है।

(V) स्थूल पेट के लिए माथा नहीं मारना है, किस श्लोक से सिद्ध करेंगे ? मुरली प्वॉइण्ट सहित बाबा की व्याख्या के आधार पर बताएँ।

अथवा

सब धंधों में है नुकसान, सिवाय ईश्वरीय धंधे के, श्लोक के अर्थ सहित बेहद में व्याख्या देकर समझायें।